*आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458*
*नवरचना NAVRACHNA*
*www.grefiglobal.org/journals/navrachna.2017*
*वर्ष 3, अंक 1–2, जून–दिसम्बर 2017, पृ. 3–20*

# उत्तर आधुनिकता : तरल आधुनिकता के रुप में

वीरेन्द्र पाल सिंह*

पिछले तीन दशकों में समाज विज्ञान के क्षेत्र में इस विचार पर एक गम्भीर परिचर्चा है कि क्या आधुनिक समाज समाप्ति की ओर अग्रसर है? तथा इनके स्थान पर एक नवीन सामाजिक संरचना का उदय हो रहा है। फ्रांसिसी वास्तुविद ल्योटार्ड (1984) ने सर्वप्रथम यह घोषणा कर डाली कि आधुनिकता अब समाप्त हो रही है तथा उत्तर–आधुनिकता का आगमन हो रहा है। इसके पश्चात 1980 के दशक में उत्तर–आधुनिकतावाद की एक लहर ने प्रायः सभी विषयों को अपने आगोश में ले लिया तथा इस पर गम्भीर परिचर्चाएं प्रारम्भ हो गयीं। समाजशास्त्र में भी इस विषय पर अनेकों विद्वानों ने गम्भीर सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किये है जिनमें एन्थोनी गिडिन्स (1990), स्कॉट लैश (1990), उलरिक बैक (1992), जिगमंट बौमेन (2000, 2012) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में जिगमंट बौमेन की तरल आधुनिकता के अवधारणात्मक प्रारुप का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है जो उत्तर आधुनिकता तथा वैश्वीकरण जैसे जटिल विषयों की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है।

जिगमंट बौमेन का जन्म 19 नवम्बर 1925 पोलेंड के पोजनान (Poznan) शहर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। जब 1939 में पोलेंड पर जर्मनी ने आक्रमण किया ताक उसके परिवार ने सोवियत संघ में जाकर शरण ली। जहाँ वह 19 वर्ष की आयु में सोवियत संघ द्वारा नियन्त्रित पोलिश सेना मे भर्ती हो गये जहाँ उन्होंने राजनीतिक प्रशिक्षक के रुप में कार्य करत हुए कोलबर्ग तथा बर्लिन के युद्ध में भाग लिया। वर्ष 1953 में उन्हे सेना से पदमुक्त कर दिया गया। सैन्य सेवा के दौरान ही उन्होंने वारसा एकेडमी ऑफ पॉलिटिकल एण्ड सोशल सांइस में समाजशास्त्र का अध्ययन किया। उनके पिता एक जियोनिस्ट (Zionst) थे तथा इजराइल में जाना चाहते थे यद्यपि बौमेन 'एन्टी–जियोनिस्ट' थे तथा अपने पिता के विचारों से असहमति रखते थे। परन्तु फिर भी इस कारण से उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। बेरोजगारी के दौरान उन्होंने एम०ए पास किया तथा 1954 मे वारसा यूनिवर्सिटी में समाजशास्त्र के प्रवक्ता पद पर कार्यरत हो गए। जहाँ उन्होंने 1968 तक कार्य किया। उन्होंने राबर्ट मेकेन्जी के निर्देशन में लंदन स्कूल आफ इकोनामिक्स में ब्रिटिश समाजवादी आंदोलन पर एक विस्कृत किया तथा 1959 में अपनी पहली पुस्तक पोलिश भाषा में प्रकाशित की। 1964 में उनकी एक पुस्तक

*प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, वैश्वीकरण एवं विकास अध्ययन केन्द्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–211 002 उ. प्र.।

'एवरी डे सोशियोलाजी' ने पोलैन्ड में काफी ख्याति अर्जित की। जिसे बाद में उन्होंने अंग्रेजी भाषा की पाठ्य पुस्तक–थिंकिंग सोशियोलाजिकली (1990) प्रकाशित की। प्रारम्भ में बोमेन रुढ़िवादी मार्क्सवादी विचारधारा के निकट थे परन्तु एन्टोनियो ग्राम्शी तथा जार्ज जिम्मल के विचारों से काफी प्रभावित हुए तथा वे पोलैन्ड की कम्यूनिस्ट सरकार के आलोचक बन गए। इस कारण से उन्हें अपनी हैबिलिटेशन (Habilitation) पूरा करने के बाद भी उन्हें प्रोफेसर के पद से वंचित रखा गया। 1968 में उन्हें वारसा यूनिवर्सिटी के पद से हटा दिया गया। इसके पश्चात उन्होंने अपनी पोलिश नागरिकता को त्याग दिया तथा इजराइल में तेल अवीब यूनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य के लिए चले गए। इसके पश्चात वे लीड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर के पद को स्वीकृत करके इंग्लैन्ड चले गए, जहां उन्होंने अपने सारे कार्य केवल अंग्रेज़ी भाषा (जो उनकी तीसरी भाषा थी) में प्रकाशित किए। धीरे–धीरे समाजशास्त्र में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गयी, विशेष रुप से पहले उनकी उत्तरआधुनिकता सम्बन्धी रचनाओ के कारण तथा बाद में एन्टी ग्लोबलाइजेशन मूवमेंट को महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करने के कारण वे विश्व के अग्रणी समाजशास्त्रियों में गिने जाने लगे। उन्होंने 57 पुस्तकें तथा 100 से अधिक रिसर्च पेपर लिखे हैं। उनका प्रमुख कार्य वैश्वीकरण, आधुनिकता तथा उत्तरआधुनिकता, उपभोगतावाद तथा नैतिकता आदि विषयों पर है। 9 जनवरी, 2017 को उनकी मृत्यु हो गई। बाद के वर्षों में उन्होंने तरल आधुनिकता (Liquid Modernity) के विभिन्न पक्षों की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है।

1980 के दशक के अन्त तथा 1990 दशक के प्रारम्भिक वर्षों में बोमैन ने कई पुस्तके प्रकाशित की जिनमे उन्होंने आधुनिकता, नौकरशाही, तार्किकता तथा सामाजिक विस्थापन जैसे विषयों का विश्लेषण किया, तथा यह विचार प्रस्तुत किया कि यूरोपीय समाज में बढ़ती हुई व्यैक्तिक सुरक्षा के लाभ प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता के एक स्तर को त्यागने के लिए सहमत हो गया है जिसका विकास यूरोपीय समाज में आधुनिकता के काल में हुआ था। उनका यह मानना है कि आधुनिकता जिसे उन्होंने बाद में एक 'ठोस' स्वरुप माना है तथा जो अजनबियों तथा अनिश्चिताओं को समाप्त कर देती थी। इसमें प्रकृति के उपर नियंत्रण, सोपानक्रमवादी नौकरशाही नियम तथा निर्देश नियंत्रण तथा श्रेणीकरण आदि सम्मिलित थे। इस सभी ने धीरे–धीरे व्यक्तिगत सुरक्षाओं को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया तथा मानव जीवन के अराजक पक्षों को पूर्ण व्यवस्थित तथा प्रचलित कर दिया। अपनी बाद की पुस्तकों उन्होंने यह विचार विकसित किया कि इस तरह की व्यवस्था बनाने की प्रक्रिया अपेक्षित परिणामों को पाने मे असफल रही। जब हमारा सामाजिक जीवन परिचित तथा प्रबंधनीय श्रेणियों में संगठित हो जाता है तो हमेशा कुछ ऐसे सामाजिक समूह होते है जिन पर शासन नहीं किया जा सकता। जिनको अलग तथा नियंत्रित भी नहीं किया जा सकता, अपनी पुस्तक 'माडर्निटी एण्ड एम्बीवेलेन्स' में ऐसे अनिश्चित को उसने 'अजनबी'(Stranzer) की संज्ञा दी।

जार्ज जिम्मेल के समाजशास्त्र तथा जैक्विस डेरीडा के दर्शनशास्त्र को आधार बनाते हुए बोमैन ने इस 'अजनबी' को एक ऐसे व्यक्ति के रुप में चित्रित किया है जो उपस्थित तो है पर फिर भी अपरिचित है, समाज का अनिर्णीय व्यक्ति। इस पुस्तक में बोमैन ने उन सभी उपागमों का विवरण देने का प्रयास किया है जो आधुनिक समाज इस अजनबी के प्रति अपनाता है, उनका तर्क है कि एक ओर उपभोक्ता–उन्मुख अर्थव्यवस्था मे अजनबी तथा अपरिचित हमेशा मोहक होता हैः भोजन की विभिन्न शैलियों, विभिन्न फैशनों में तथा टूरिज्म में इस बात का अनुभव करना सम्भव है कि अपरिचित

की मोहकता क्या है। फिर भी इस अजनबीपन का एक अधिक नकारात्मक पक्ष भी है। वह संभावित लुटेरा है, एक ऐसा व्यक्ति जो समाज की सीमा के बाहर है तथा एक निरन्तर खतरा है।

1990 के दशक के अन्त मे बोमैन ने उत्तर आधुनिकता तथा उपभोक्तावाद पर अपने अध्ययन को केन्द्रित किया। उसने यह माना कि बीसवीं शतब्दी के उत्तार्ध में आधुनिक समाजों में एक स्थानान्तरण की एक प्रक्रिया घटित हो रही थी। इसने इसको उत्पादकों के समाज से उपभोगताओं के समाज में परिवर्तित कर दिया। बोमैन के अनुसार इस परिवर्तन ने फ्राएड के आधुनिक दुविधा को उल्टा कर दिया–उदाहरणार्थ अधिक स्वतंत्रता खरीदने उपभोग करने तथा जीवन का आनन्द लेने की स्वतत्रंता के बदले में सुरक्षा को त्याग दिया गया। बोमैन ने इसे आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर स्थान्तरण के रुप में देखा है। सहस्राब्दी के बदलने तक बोमैन ने अपनी पुस्तकों में उत्तर आधुनिकता शब्द के चारों ओर फैले भ्रम को दूर करने का प्रयास करते हुए 'तरल' तथा 'ठोस' आधुनिकता की उपमाओं का प्रयोग प्रारम्भ किया। इस प्रकार से बोमैन उत्तर आधुनिकता की भ्रामक अवधारणा से आगे चले जाते हैं। तरल आधुनिकता के सिद्धान्त की एक स्प्ष्ट रुपरेखा इनकी पुस्तक 'लिक्विड माडर्निटी' में प्रस्तुत की गई है। तरल आधुनिकता की व्याख्या में बोमैन ने 5 मूलभूत अवधारणाओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया। जिनके चारों ओर मानव दशाओं का रुढ़िवादी चिन्तन केंद्रित रहा हैः मुक्ति (Emancipation), समय–स्थान/शून्यता (Time/Space), कार्य (work), तथा समुदाय (Commuunity)। प्रस्तुत शोध पत्र में तरल आधुनिकता के इन पक्षों पद विस्तृत चर्चा की गयी है।

## 1. मुक्ति (Emancipation)

प्रसिद्ध नवमार्क्सवादी, समाजशास्त्री हबर्ट मारक्यूज ने 1970 के दशक में अपने एक लेख 'लिबरेशन फ्राम दी एफल्यूएन्ट सोसाइटी' (1989) में यह विचार व्यक्त किया था कि अधिकतर व्यक्ति आज समाज से मुक्ति की आवश्यकता को महसूस नहीं करते तथापि वे व्यक्ति जो संख्या में बहुत कम है मुक्ति हेतु कार्य करने के लिए तैयार है तथा इनमें से अधिकतर को इस बारे में कम ही पता है कि अधिक मुक्त भविष्य वर्तमान स्थिति से किस प्रकार से अलग होगा। मारक्यूज के इस विचार को ही बोमैन आगे विकसित करते हैं। मुक्त होने का अर्थ है अभीष्ट अथवा वांछित प्रयासों में किसी रुकावट (hinderance), अवरोध (obstacle), प्रतिरोध (resistance), अथवा किसी अन्य रोक–टोक (impediment) से मुक्त महसूस करना है। इसके बाद उनका तर्क है कि अवरोध से (constraint), से मुक्त महसूस करने का अर्थ है कि अपनी इच्छाओं (अथवा, कल्पनाओं) तथा अभिलाषाओं से 'जगत (समाज) की हठीली उपेक्षा' के बीच संन्तुलन की खोज है, इस सन्तुलन को दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है कि या तो व्यक्ति अपने कार्य करने की क्षमता का विस्तार करे (स्वयं को के जुझारु इन्सान बना ले) अथवा अपनी इच्छा को सीमित कर ले।

मुक्ति की इन दो व्यूह रचनाओं के मध्य भेद करते हुए बोमैन ने दो प्रकार की स्वतंत्रताओं में भेद किया है– 1. व्यक्तिपरक मुक्ति (Subjective freedom) – कोई अपनी मुक्ति की सीमाओं को कैसे महसूस करता है तथा 2. वस्तुनिष्ठ मुक्ति (objective freedom) – किसी की वास्तव में कार्य कर सकने की क्षमता सम्बंधी। यह इस तथ्य को उजागर करता है कि व्यक्ति भले ही वस्तुनिष्ठ रुप से मुक्त न हो फिर भी वे स्वयं को मुक्त महसूस करते हैं क्योंकि या तो वे यह एहसास करने मे असफल

रहते है कि वे मुक्त नहीं है अथवा वे इस डर के मारे ऐसा करते हैं क्योंकि वे मुक्ति के विचार को पसंद नहीं करते क्योंकि मुक्ति के साथ–साथ विपत्तियाँ भी आती हैं। जो व्यक्ति को 'मुक्ति के मिश्रित आर्शीवादों' तक ले जाती हैं।

यहाँ पर बोमैन एक लंबे यात्रा वृतांत का संदर्भ देते हैं इसमें ओडिसस (ग्रीक पौराणिक कथाओं का नायक) अपनी यात्रा के दौरान एक ऐसे नाविक को अपने जाल में फंसाता है जिसे सैसी (एक जादूगरनी) अपने जादू से वराह में बदल देती है। ओडिसस एक जादुई दवा के प्रभाव से उसे पुनः नाविक में बदल देता है। परन्तु वह नाविक उसके प्रति कृतज्ञ होने के स्थान पर उससे इस परिवर्तन के विरुद्ध शिकायत करता है कि उसने ऐसा क्यों किया। वह वराह के रुप में अपने जीवन से अधिक सुखी था। इस परिवर्तन के द्वारा उसे पुनः उसी घृणापूर्ण जीवन को व्यतीत करना होगा। इस प्रकरण के आधार पर बोमैन दो प्रश्न खड़े करते हैं–

1. मुक्त होने की प्रक्रिया इतनी धीमी क्यूँ है।
2. जब मुक्ति हो जाती है तब यह प्रायः अभिशाप क्यों बन जाती है?

पहले प्रश्न के लिए उसका उत्तर है कि मनुष्य मुक्ति के लिए तैयार नहीं है। इस प्रकार के उत्तरों के साथ या तो अपनी मुक्ति द्वारा छले गये व्यक्तियों के प्रति दया का भाव है अथवा समुदाय में अपनी मुक्ति के अनिच्छुक व्यक्ति का जनसमुदाय के प्रति क्रोध परिलक्षित होता है इस प्रकार के उत्तरों के साथ इस बात की व्याख्या करने के प्रयास भी किए जाते हैं कि व्यक्ति मुक्त होने की आवश्यकता को महसूस क्यों नहीं करते तथा इसके लिए आधुनिक संस्कृति पर विभिन्न प्रकार के दोष मढ़ते है। जिसने (आधुनिक संस्कृति ने) 'सम्पदा' (having) को स्वभाव (being) में बदल देता है; जैसे उपेक्षित व्यक्ति का बुर्जुआवाद (ebourgenisement of the under dog) अथवा एक सांस्कृतिक उद्योग (culture industry) जो व्यक्ति में आध्यात्मिक संतुष्टि की अपेक्षा मनोरंजन की प्यास उत्पन्न करता है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर (ग्रीक कथा में नाविक का) है कि व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि यह अपने साथ विपत्तियाँ भी लाती है। इस प्रकार के उत्तर मुक्ति (freedom) की इच्छा स्वातन्त्रवादी (libertanan) अवधारणाओ की आलोचना करते है जिसकी रुपरेख चार्ल्स मूरे जैसे विद्वानों ने प्रस्तुत की है जिसमें वे 'प्रसन्नता' (happiness) को व्यक्ति की साधन–सम्पन्नता से जोड़कर देखते हैं। मूरे का तर्क है कि किसी घटना की संतुष्टि इस बात से होती है कि "मैंने इसे किया" परन्तु यह तब दोषपूर्ण हो जाती है जब अपने संसाधनों को खर्च करना जोखिम के भय को तथा ऐसी असफलता जिसमें अपील का अधिकार या सही कर पाने की सम्भावना न हो, का पूर्वाभास देता है।

इसके पश्चात बोमैन हॉब्स व डुर्कहाइम की विरासत से प्रेरणा लेकर अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि हम मुक्ति की इच्छा व स्वातन्त्रवादी अवधारणा के लाभों के बारे में संदेह रखने का अधिकार रखते हैं। यहाँ वह डुर्कहाइम के इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं कि सामाजिक दबाब की एक मात्रा वास्तव मे एक मुक्ति की शक्ति है। डुर्कहाइम के कथानुसार "व्यक्ति समाज के सामने अपने अस्तित्व का समर्पण कर देता है तथा यह समर्पण उसकी 'मुक्ति' की शर्त है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता में अंधी अकल्पनीय भौतिक शक्तियों से छुटकारा पाना निहित है; वह इसे (freedom) इन अंधी अकल्पनीय भौतिक शक्तियों के विरुद्ध समाज की बुद्धिमान तथा महान शक्तियों द्वारा विरोध

करके प्राप्त करता है, जिसके (समाज के) संरक्षण में वह शरण लेता है। स्वयं को समाज के पक्ष में रखकर वह, एक सीमा तक, इस (समाज) पर निर्भर भी करता है; परन्तु यह एक मुक्तिपूर्ण निर्भरता है, इसमे किसी भी प्रकार का विरोधाभास नहीं है" (डुर्कहाइम 1933:115)।

दूसरे शब्दों में, समाज के आदर्शो (norms) के सामने समर्पण करने के अलावा मुक्ति प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है। व्यक्ति को समाज की आवश्यकता मुक्त रहने के लिए पड़ती है। समाज से पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ है अपने चारों ओर स्थित उन व्यक्तियों/समूह की इच्छा के बारे में अनिर्णय तथा अनिश्चितता की एक चिर स्थायी यातना, जबकि सामाजिक दबाब द्वारा घनीभूत प्रतिमान तथा दिनचर्या हमारे सहज आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करने के साथ–साथ, हमें इन क्रियाओं को सम्पन्न करने तरीकों की सूचना प्रदान करती है, तथा इस जीवन में हमें एक निश्चितता का आभास कराती है।

अब बोमैन अपने तर्को की रुपरेखा प्रस्तुत करते है जो इस विचार का समर्थन करती है कि (समाज में) दिनचर्या का एक तत्व आवश्यक है। इसके लिए वह एरिक फ्राम की अवधारणा 'हमें निश्चितता चाहिये'; रिचर्ड सीनेट की 'चरित्र की अवधारणा', तथा गिडिन्स की 'स्वभाव' (habitus) की अवधारणा से उद्धरण लेते है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि व्यक्तियों को समाज में आदर्शो की आवश्यकता होती है। परन्तु उत्तर आधुनिक समाज में आदर्श तथा दिनचर्याएं कुछ अधिक ही कम–स्थिर है जितना कि एक समय (आधुनिक समाज में) थीं। अब वह समय आ गया है कि जब कि 'आत्म' की कोई सामाजिक परिभाषा नहीं रह गयी तथा व्यक्ति से 'स्वयं' अथवा 'आत्म' को अपनी मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञता के अर्थ में परिभाषित करने की अपेक्षा है, न कि समाज अथवा सार्वभौमिक सिद्धान्तों के आधार पर।

व्यक्ति को वे सभी प्रकार की स्वतन्त्रताएं पहले ही प्रदान की जा चुकी हैं जिनकी उसने कभी कल्पना की थी तथा हमारी सामाजिक संस्थाएं व्यक्तियों को आत्म–परिभाषित करने की चिन्ताओं को सौप देने के लिए कहीं अधिक तैयार है। जबकि वे सार्वभौमिक सिद्धान्त जिन्हें कि हमारे जीवन का मार्गदर्शन करना चाहिए, कठिनाई से ही मिलते है। बोमैन कहते है कि आज मारक्यूज का 'समुदायिकतावाद के प्रति विश्वास' पुराना हो चला है क्योंकि अब ऐसा कोई भी सामाजिक पक्ष नहीं रह गया है जिसमें हम व्यक्ति को किसी अन्य मार्ग से भेज सकें, जो कुछ बच गया है वह मनोवैज्ञानिक शय्या तथा मोटल बैड (motel beds) हैं। व्यक्ति (समाज से) विस्थापित (disembedded) हो चुका है तथा उसके (समाज में) पुनः–अंतः स्थापित (re-embed) होने के लिए कोई स्थान नहीं बचा है।

कई बार ऐसा भी प्रकट किया जाता है कि समकालीन समाज आलोचकों के प्रति आदर भाव नहीं रखता। ऐसा मत यह मानकर कि 'आदर–भाव' (hospitability) का अर्थ जो क्रमिक ऐतिहासिक कालों में अपरिवर्तनीय रहा है, वर्तमान परिवर्तन की प्रकृति को समझने मे भूल कर रहे है। यहाँ पर मुख्य बिन्दु है कि समकालीन समाज (उत्तर–आधुनिक) ने 'आलोचक के प्रति आदर भाव' (hospitality to Critique) को पूर्ण रुप से एक नवीन अर्थ दे दिया है तथा आलोचनावादी विचारों तथा क्रियाओं को समायोजित करने का एक तरीका खोज लिया है, यद्यपि इस समायोजन के परिणामों के प्रति प्रभाव शून्य (immune) रहते हुए, तथा खुले–घर की नीति के परीक्षणों तथा प्रयोगों से स्वयं को अप्रभावित तथा बेदाग रखते हुए कमजोर होने की अपेक्षा और आधिक सुदृढ़ता प्राप्त कर ली है।

तरल आधुकिता के युग में समाज का आलोचकों के प्रति आदर–भाव एक 'कारवाँ–साइट' (caravan site) जैसे मोटल के प्रतिमान का पालन करता दिखता है। जहाँ पर लोग अपने–अपने कारवाँ के साथ आकर ठहरते हैं, उसकी सुविधाओं का उपभोग करते हैं। सुविधाओं में त्रुटि/कमी होने पर उसकी आलोचना भी करते है, शिकायत भी करते हैं परन्तु स्वयं उसमे सुधार करने के उद्यम नहीं करते या उसे स्वयं चलाने का प्रयास नहीं करते। अधिक असंतुष्टि की दशा में वहाँ पर भविष्य में कभी न ठहरने का निर्णय ले लेते है तथा अपने परिचितों को वहाँ न ठहरने की चेतावनी देते हैं। इस प्रकार कारवाँ साइट की संरचना व उसकी प्रबन्धन कार्यशैली इर आलोचनाओं से बहुत कम ही प्रभावित होती है। इस दृष्टान्त के माध्यम से बोमैन ने आधुनिकता के दो स्वरुपों ठोस व तरल आधुनिकता के मध्य समाज की प्रकृति मे अन्तर करने का प्रयास किया है तथा स्पष्ट किया है कि आलोचनावादी सिद्धान्तकार (cutical throrists) विशेष रुप से एडोर्नो (Adorno) जब आलोचनावादी सिद्धान्त का निर्माण कर रहे थे उस समय समाज में अधिक से अधिक व्यक्ति समाज को अपने घर की तरह देखते थे तथा इसमें इस प्रकार से क्रिया–कलाप करते थे जैसे वे इसके स्थायी निवासी हों तथा आवश्यकता पड़ने पर इसकी संरचना तथा व्यवस्था को परिवर्तित भी कर सकते थे। परन्तु आज स्थितियां बदल गयी है। आज आलोचनावादी जो पहले के (ठोस) आधुनिक समाज में 'उत्पादक टाइप का आलोचक' (producer type critique) था आज के तरल आधुनिक समाज मे 'उपभोक्ता टाइप आलोचक' में बदल गया है। उसकी आलोचना कारवाँ साइट पर जा कर निश्चित समय तक वहाँ ठहरने वाले काफिले की आलोचना के समान होती है। बोमैन का मानना है कि यह परिवर्तन मात्र पब्लिक के स्वभाव (मूड) मे परिवर्तन के कारण नहीं है जैसा कि ज्यादातर लोग समझते है। इस परिवर्तन की जड़े काफी गहरी है; तथा वे सार्वजनिक स्थल के गहन रुपान्तरण में इसका मूल है तथा सामान्य रुप से उस तरीके से है जिसमें आधुनिक समाज कार्य करता है तथा स्वयं को स्थिर बनाये रखता है।

वह आधुनिकता का प्रकार तथा बोधन तंत्र (cognitive frame work) जो शास्त्रीय आलोचनावादी सिद्धान्त का लक्ष्य (target) था उससे बहुत भिन्न है जो आज की पीढ़ियों के जीवन–तन्त्र का निर्माण करता है। उस समय का समाज भारी (heavy), ठोस (solid), घनीभूत (condensed) तथा व्यवस्थित (systematic) था। आलोचनात्मक काल की आधुनिकता स्थानीय रुप से ऐसी अवस्था में थी जिसमें एक सर्वसत्तावाद (totalitananism) की भी प्रवृत्ति निहित थी। उस आधुनिकता के दो महत्वपूर्ण प्रतिरुप फोर्डिस्म (Fordism) तथा वेबर द्वारा चित्रित नौकरशाही (Buraucracy) थे। जिसमें व्यक्ति की पहचान तथा सामाजिक सम्बन्ध महत्वहीन थे मानो कि वे अपने है, छातों, तथा ओवरकोट के साथ इनको भी क्लॉक रुम मे जमा करके किसी फैक्ट्री के अन्दर जा रहे हों। तथा उनके सारे क्रिया–कलाप आदेशों तथा नियमों से बंधे हो जिसका वे विरोध नहीं कर सकते थे। इस काल में नियन्त्रण के उपाय बड़ी जेल (panoptiocon) जिसमें रहने वालों की हर समय निगरानी बड़े–बड़े टावरों से की जाती हो; नेता (big brother) जिसे कभी चकमा न दिया जा सकता हो तथा जो हमेशा उत्सुक, तेज, तथा विश्वासपात्रों को पुरुस्कृत करने तथा नमकहरामों को दण्ड देने में तत्पर हो; तथा कोन्जलेगर/गुलाग (konzlager/Gulag), स्थल जहाँ मानव की आघातवर्धनीयता की (malleability) को प्रयोगशाला मे जांच की जाती थी तथा जो इस जांच मे सफल नहीं होते थे उन्हें या तो गैस चैम्बर में या जिन्दा चुनवा कर मार दिया जाता था (नाजी जर्मनी

के समय में 'कान्जलेगर' का प्रचलन था; ऐसा ही कुछ सोवियत रुस में स्टालिन के काल में मजदूरो के साथ किया गया। इन कैम्पस् को 'गुलाग' कहा जाता था) आलोचनावादी सिद्धान्तकार जो मूल रुप से मार्क्सवादी थे तथा नाजी जर्मनी को छोड़कर अमेरिका में जा बसे थे, उनकी आधुनिकता की आलोचना इस प्राधिकारवादी प्रवृत्ति की आलोचना थी। जो उस समय के ठोस आधुनिक समाजों मे प्रचुर मात्रा में थी।

जबकि तरल आधुनिकता के युग में इस प्रकार की बाधाएं न तो अस्तित्व में है और न ही उनके पुनः अस्तित्व में आनक की कोई स्मभावना ही है। तरल आधुनिकता आज से 100 वर्ष पूर्व के आधुनिक समाज से कमतर नहीं है। परन्तु दो चीजें तरल आधुनिकता युग को ठोस आधुनिक युग से भिन्न बनाती हैं;

(1) प्रारम्भिक आधुनिक भ्रम का धीरे–टूटना तथा तीव्र पतन (Gradual collapse and swift decline of early modern illusion): इस विश्वास का कि हम जिस पथ (आधुनिकता) पर अग्रसर है इसका अन्त होगा, जो कि ऐतिहासिक परिवर्तन का प्राप्य उद्देश्य है; एक पूर्णता की अवस्था कल, अगले वर्ष अथवा अगली सहस्राब्दी में प्राप्त की जा सकेगी; कुछ अच्छा समाज, न्यानपूर्ण समाज अथवा संघर्ष मुक्त समाज की स्थापना सम्भव हैं;

(2) दूसरा मूल परिवर्तन है–आधुनिकीकृत कार्यों व कर्तव्यों का विनियमन (deregulation) तथा निजीकरण (privatization) मानवीय तर्क द्वारा किये जाने वालों को कार्यों को पहले मानव प्रजाति की सामूहिक देन तथा सम्पत्ति मे रुप में देखा जाता था; परन्तु अब इसका विखण्डीकरण होकर यह 'व्यक्तिपरक' (individualized) हो गयी है; इसे वयक्ति को दे दिया जाता हे उसकी कुशलता व सामर्थ्य के आधार पर। यद्यपि कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से पूरे समाज में सुधार लाने का विचार पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है परन्तु इस पर दिये जाने बल मे निर्णय पूर्ण परिवर्तन व्यक्ति के आत्म की ओर हो गया है। जिसके कारण नैतिक/राजनीतिक चर्चा 'न्याय पूर्ण समाज' (Just society) के ढ़ांचे सक निकलकर 'मानव अधिकारों' पर केन्द्रित हो गयी है। आज यह वयक्ति पर छोड़ दिया गया है कि वह अपनी जीवन सम्बन्धी समस्याओं को स्वयं हल करे अथव उसे बेहतर करे।

आधुनिकता के अनेकों अर्थ है तथा इसके आगमन तथा प्रगति को अनेकों तथा भिन्न पहचान चिन्हों के माध्यम से खोजा जा सकता है। आधुनिक जीवन की एक विशेषता तथा इसका आधुनिक विन्यास (setting) का आधार वह भिन्नता है जिसकी वजह से आधुनिकता पहले की अवस्था से अलग है। यह विशेषता इतनी महत्वपूर्ण है कि आधुनिकता की अन्य सभी विशेषताएं इसका अनुसरण करके ही उत्पन्न हुई थीं। यह विशेषता समय (time) स्थान (space) के मध्य परिवर्तित सम्बन्ध है।

आधुनिकता तब प्रारम्भ होती है जब स्थान व समय रहन–सहन के क्रिया–कलापों सक पश्थम हो गये तथा इस प्रकार से ये कार्य योजना व क्रिया की सुस्पष्ट, तथा परस्पर स्वतन्त्र श्रेणियों के रुप में सिद्धान्त रुप देने के लिए तैयार हो गये। पूर्व–आधुनिक समाजों में शताब्दियों तक ये एक–दूसरे से इतना गुंथ गये थे कि जीवन के अनुभवों में इनके बीच अन्तर करना कठिन था क्योंकि ये एक स्थायी तथा प्रत्यक्ष रुप से कोमलता के साथ परस्पर गुंथे हुए थे। आधुनिकता में समय का इतिहास है, समय की 'वहन क्षमता' (carrying capacity) में निरन्तर विस्तार होने के कारण इसका इतिहास

है। अर्थात स्थान के फैलाव की लम्बाई कर देना, जिसे समय की इकाईयाँ द्वारा बीतने (pass) लाँघने (cross) ढक लेने (cover) अथवा जीत लेने (conquer) को मापना सम्भव हो गया। जब एक बार स्थान के ऊपर चलने की गति (speed of movement) मानवीय चतुरता, कल्पना, तथा साधन संपन्नता बन जाती है तो समय इतिहास का स्वरुप धारण कर लेता है।

गति का वास्तविक विचार और अधिक सुस्पष्ट रुप से त्वरण (acceleration) का विचार जब समय व स्थान के मध्य सम्बन्ध के संदर्भ में हो, इसकी भिन्नता की कल्पना करता है तथा यदि इस सम्बन्ध में कोई परिवर्तनयिता न हो तो इसका मुश्किल से ही कोई अर्थ होगा। एक बार दूरी समय की इकाईयों में से गुजर जाती है तो यह तकनीकी पर, यातायात के कृत्रिम साधनों पर निर्भर हो जाती है व सभी विद्यमान, चलने की गति की परम्परागत सीमाएं, सिद्धान्त रुप से, भंग हो जाती हैं। केवल आकाश ही अब उसकी सीमा है (जिसका बाद मे प्रकाश की गति के रुप में पता चला) तथा आधुनिकता एक निरन्तर, अबाध, तथा तीव्रता से इसे प्राप्त करने का प्रयास थी। इसकी नयी–नयी प्राप्त लचक तथा व्यापकता के कारण आधुनिक समय अन्तरिक्ष की विजय में पहला तथा प्रधान हथियार बन गया।

समय व स्थान के मध्य आधुनिक संघर्ष मे, स्थान, ठोस (solid), आवेगहीन (stolid), स्थूल (unwieldy) तथा निष्क्रिय पक्ष, रक्षात्मक व अर्थहीन युद्ध मे सक्षम–समय की लचीली प्रगति मे बाध ाक था। जबकि समय, इस युद्ध मे सक्रिय तथा गतिमान पक्ष था, यह पक्ष हमेशा आक्रमक रहाः आक्रमणकारी, विजयी तथा उपनिवेश बनाने वाली शक्ति। चलने की गति तथा गतिशीलता के तीव्र साधनों की आधुनिक काल में शक्ति व प्रभुत्व के प्रमुख औजार के रुप में निरन्तर वृद्धि हुई।

माइकल फूको (Michel Foucault) ने नेरेमी बैन्थम के 'पैनोप्टिकान' (एक गोलनुमा आकार की जेल) के डिजाइन का आधुनिक शक्ति के एक बुरे रुपक के रुप मे प्रयोग किया है। 'पैनोप्टिकॉन' मे कैदियों को स्थान से बांध दिया जाता था तथा उनके सभी गतिविधियों को प्रतिबंधित कर दिया जाता था तथा उन्हें मोटी, गहन तथा निकट से पहरे के अन्दर रहने वाली दीवारों तक सीमित कर दिया जाता था। तथा उन्हें अपनी बिस्तर, कोठरी या कार्य–पट्टियों में स्थिर कर दिया जाता था। वे वहां चल नहीं सकते थे क्योंकि वक निगरानी में थे; सभी समय उन्हें अपने निश्चित स्थान पर ही रहना पड़ता था क्योंकि उन्हें नहीं पता था तथा पता करने का कोई मार्ग भी नहीं था, कि उनकी निगरानी करने वाले उस समय कहाँ है। क्योंकि वे अपनी इच्छा अनुसार जाने के लिए स्वतन्त्र थे। निगरानीकर्ताओं की सुविधा तथा गतिमान होने की सुविधा उनके प्रभुत्व का अधिपत्र था; कैदयों की 'स्थान के साथ बंधे रहने की मजबूरी' थी क्योंकि वह स्थान अत्याधिक सुरक्षित, तथा उनके आधीनता के बहु–स्तरीय सम्बन्धों को तोड़ना अथवा शिथिल करना असम्भव था । इस प्रकार से समय पर पूर्ण नियन्त्रण मैनेजर की शक्ति का राज था। अपने अधीनस्थों को एक स्थान पर स्थिर करके–उन्हें वहाँ से हटने के अधिकार को नकार कर तथा उनका समयबद्ध दिनचर्या जिसका पालन करने को वे बाध्य थे। इस प्रकार से शक्ति के पिरामिड का निर्माण गति (velocity), यातायात के साधनों तक पहुँच, तथा इसके फलस्वरुप गतिमान होने की स्वतन्त्रता से किया गया।

'पेनिप्टकॉन' शक्ति सम्बन्ध के दो पक्षों के मध्य परस्पर जुड़ाव व मुकाबले का एक प्रारुप था परन्तु इसके साथ कई मुश्किले भी थी जैसे कि यह बहुत खर्चीली व्यवस्था थी व दोनो ही पक्षों मे तनाव की स्थिति को उत्पन्न करती थी।

पिछल कुछ दशकों में व्यख्याकारों को 'इतिहास का अन्त' उत्तर आधुनिकता जैसे शब्दों तथा मानवीय सह–निवास के प्रतिमानों में तीव्र परिवर्तन को प्रकट करने की प्रवृत्ति तथा, उन सामाजिक दशाओ में जिनमें आजकर जीवन की राजनीति की जाती है, इन सभी के पीछे एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि गतिमानता की गति को और अधिक तीव्र करने का प्रयास अपनी प्राकृतिक सीमा तक पहुँच गया है। आज शक्ति इलैक्ट्रनिक सिग्नल की गति से चल रही है तथा इसके आवश्यक निर्माण तत्वों के गतिमानता मे लगने वाला समय 'तत्कालिकता' (inbtantaneity) मे आकर सीमित हो गया है। सभी व्यवहारिक उद्देश्यों से शक्ति सही अर्थ में अपरदेशीय (exterritionial) अब यह न तो स्थान से बंधी होती है तथा न ही इसे स्थान के प्रतिरोध द्वारा सीमित किया जा सकता है। सेलुलर फोन का आगमन इस दिशा मे (स्थान–निर्भरता पर) एक आखिरी वार साबित हो सकता है; इसके आने के बाद अब टेलीफोन सॉकेट की अनिवार्यता समाप्त हो गयी है। अब इसका कोई अर्थ नहीं रह गया है कि निर्देश प्रदान करने वाले वयक्ति की लोकेशन कहाँ हैं पास में अथवा दूर में; इसी अर्थ मे, वह किसी वीरान जंगल मे है अथवा किसी सभ्य और व्यवस्थित स्थान पर। यह एक शक्ति सम्पन्न वयक्ति को सही अर्थ में अभूतपूर्व सम्भावनाएं प्रदान करता है; इससे शक्ति की 'पेनोप्टिकल' तकनीक की अनुपयुक्त तथा उत्तेजक पक्षों को समाप्त किया जा सकेगा। आधुनिकता के इतिहास वर्तमान अवस्था में जहाँ कहीं भी हो परन्तु 'पोस्ट–पेनोप्टिकल' अवस्था में तो अवश्य है। पेनेप्टिकल अवस्था में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कि प्रभारी व्यक्तियों को सदैव 'वहां पर' अथवा 'पास मे, नियन्त्रण कक्ष में उपस्थित रहना आवश्यक था। पोस्ट पेनोप्टिकल शक्ति सम्बन्धों में अब यह महत्वपूर्ण है कि शक्ति के नियन्त्रण यन्त्रों पर कार्यरत वयक्ति, जिन पर इस सम्बन्ध में अधीनस्थ व्यक्तियों का भाग्य निर्भर है, किसी भी क्षण पहुच से बाहर हो सकते है–सर्वथा अनुपलब्धता की स्थिति में।

पेनोप्टिकान का अन्त, 'पारस्परिक अनुबंद्ध के युग की समाप्ति' की पूर्व सूचना प्रदान करता हैः निरीक्षको, निरीक्षत के मध्य; पूंजी और श्रमिकों के मध्य; नेताओं व उनके समर्थकों के मध्य; युद्ध मे रत सेनाओं में आज शक्ति की सर्वश्रेष्ठ तकनीक है पलायन (escape), खिसक जाना (slippage), लुप्त हो जाना (elision), तथा टाल जाना (avoidance); किसी भी क्षेत्रीय बंधन/कारावास का इसकी सभी आदेश देने व उनके अनुपालन के भारी–भरकम ताम–झाम के साथ, तथा इसके परिणामों की जिम्मेदारी लेने के साथ–साथ इसके पूरे खर्च को वहन करने की जिम्मेदारी लेने की अपेक्षा प्रभावशाली अस्वीकरण (effective rejection) कर देना उचित माना जाता है। शक्ति की इस नयी तकनीक को खाड़ी युद्ध तथा युगोस्लाव युद्ध में आक्रमणकारियों द्वारा उपयोग की गयी व्यूह रचनाओं में स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है। तरल आधुनिकता के युग मे युद्ध की भी एक नयी कार्य–प्रणाली ने जन्म लिया जिसका उद्देश्य किसी नये क्षेत्र को जीतना नहीं अपितु उन दीवारों को

कुचल देना है जो नवीन, प्रवाही (fluid) वैश्विक शक्तियों के प्रवाह को रोकती हैं। शत्रु के सिर को कुचलने का उद्देश्य अपने स्वयं के नियमों को स्थापित करने की इच्छा तथा इस प्रकार शक्ति के दूसरे, असैनिक, हथियारोके उपयोग के लिए अभी तक बाधित, किलेबन्द, अनुलब्ध स्थानों को खोल देना है। आजकल युद्ध दूसरे साधनो से वैश्विक मुक्त व्यापार का विस्तार की तरह अधिक दिखयी पड़ता है।

(2) व्यैक्तिकता (**Individuality**)

बौमेन ने दो प्रकार के पूंजीवादों मे भेद किया हैः भारी पूंजीवाद (Heavy Capitalism) तथा हल्का पूंजीवाद। इस सम्बन्ध में उन्होंने दो संवादों की चर्चा की हैः (1) जोशुआ संवाद (Joshua Discourse) – यह संवाद पश्चिमी बौद्धिक संस्कृतियों में पिछले 2000 वर्षो से प्रचलित है तथा इसकी समय–समय पर ऐतिहासिक दशाओं के अनुसार व्याख्या की जाती रही है। इसका प्रमुख आधार अतींद्रिय तार्किकता (transcendental rationality) है; तर्क की एक एकल, सही, ईश्वरीय दशष्टि मनुष्य के द्वारा सोचने व देखने के सभी तरीकों से ऊपर उठकर है। इस संवाद मे व्यवस्था नियम है तथा अव्यवस्था एक अपवाद है'। व्यवस्था का अर्थ हैकि एकरसता (monotony), नियमितता (regularity), पुनरावृत्ति (repetitiveness) तथा पूर्वानुमेयता (predictability); किसी भी विन्यास को हम 'व्यवस्थित' तभी कहते है जब उसमें कुछ प्रघटनाएं एक प्रतिमानित तरीके से ही घटित होती है न किसी अन्य वैकल्पिक तरीके से। इस प्रकार जोशुआ संवाद के व्यवस्थित जगत एक कठोर नियन्त्रित व्यवस्था है। (2) जेनिसिस संवाद (Genesis Discourse)–जोशुआ संवाद का प्रस्थापनाओं को 1940 व 1950 के दशक मे चुनौती दी गयी तथा एक नये संवाद का उदय हुआ जिसे 'जेनिसिस संवाद' के नाम से जाना जाता है। इसकी मान्यता है कि अव्यवस्था नियम है तथा व्यवस्था अपवाद है। बौमेन का मानना है कि अभी हाल ही तक जोशुआ संवाद ही चल रहा था; परन्तु अब अधिक से अधिक जेनिसिस संवाद प्रचलन में आ रहा है। जोशुआ संवाद के प्रतिरुप के रुप मे फोर्डिज्म (Fordism) के माध्यम से आधुनिक समाज को समझा जा सकता है। जो कि अन्तिम समय तक औद्योगीकरण, संग्रहण तथा नियमन का प्रारुप माना जाता रहा है। एलेएन लिपिज़ के शब्दों मेः

"(a) combunation of forms of adjustment and expectations and contradictory behaviour by individual agents to the collective principales of the regime of accumulation___

The industrial paradigm included the Tylorian principal of rationalization, plus constant mechanization____ based on separation of the intellectual and manual aspects of the labour__"

" यह व्यक्तियों की समन्वय, अपेक्षाओं तथा विरोधी व्यवहारों के स्वरुपों का संचयन प्रशासन के सामूहिक सिद्धान्तों की युक्ति हैकृकृकृकृ इस औद्योगिक प्रारुप मे टॉयलर के तार्किकता सिद्धान्त तथा

निरन्तर मशीनीकरण सम्मिलित है———————— श्रमिकों की बौद्धिक तथा शारीरिक पक्षों के पृथकीकरण पर आधारित है"

बौमेन के अनुसार फोर्डिस्ट प्रारुप में इससे भी अधिक कुछ चीजें है; यह ज्ञान–पद्धति शास्त्र की एक पूरा कार्यस्थल भी है। जिस पर एक पूरी विश्व दृष्टि को विकसित किया गया है। वह तरीका जिससे मनुष्य संसार को समझते है; सभी कालों मे वह 'प्रेक्सियोमोराफिक' (praxiomorphic) भी अवश्य होता हैः इसकी रचना का स्वरुप दिन–प्रतिदिन की जानकारी से, इससे कि लोग क्या कर सकते हैं, तथा वे इसे प्रायः किस प्रकार से करते है। फोर्डिस्ट फैक्ट्री बिना किसी सन्देह के व्यवस्था–लक्षित सामाजिक अभियांत्रिकी (order aimed soual engineering) का अभी तक का सबसे उच्च कार्यसिद्धि है। कोई आश्चर्य नही कि यह उस प्रत्येक के लिए एक ऐसे रुपकीय आदर्श सिद्धान्त को स्थापित करता है जो यह समझने का प्रयास कर रहा हो कि मानवीय वास्तविकता अपने सभी स्तरों पर किस तरह कार्य करती है वैश्विक–समाजकीय (global-societal) के साथ–साथ व्यक्तिगत जीवन मे भी। इसको आसानी से खोज पारसन्स के 'सामाजिक व्यवस्था' मे की जा सकती है जो 'मूल्यों के केन्द्रीय समूह' (central cluster of values) से शासित होता है। तथा सारत्रे को 'जीवन परियोजना' (life project) मे भी देख सकते है जो आत्म की पहचान निर्माण के जीवन पर्यन्त प्रयासों के लिए मार्गदर्शिका का कार्य करती है।

वस्तुतः कोई फैक्ट्री का कोई विकल्प नही था अत इस प्रारुप को सभी समाजों मे स्वीकृत होने में कोई बाधा नहीं आयी तथा यह पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों ही विचारधाराओं में मतभेद इसकी स्वमित्व व नियन्त्रण को लेकर है न कि औद्योगिक इकाईयों के प्रति। इस प्रकार से आध ुनिक समाज की भारी, स्थूला, स्थिर जड़वत ठोस अवस्था मे फोर्डवाद उसकी आत्म चेतना थी। इस अवस्था में पूंजी, प्रबन्धन व श्रमिक सभी, अच्छे या बुरे कारणों से एक–दूसरे की संगति मे लम्बे काल तक, शायद हमेशा के लिए बने रहते– बड़ी–बड़ी इमारतो वाली फैक्ट्रियों में, भारी मशीनो तथा अपार श्रमिक शक्ति से बंधे हुए थे। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रत्येक फैक्ट्री को एक किलेनुमा आकार प्रदान कर दिया जाता था जिससे कठोर नियन्त्रण रहता था। जहाँ उनकी व्यक्तिगत पहचान तथा सामाजिक सम्बन्ध गेट पर क्लाक रुम में अपने हैट के साथ ही जमा हो जाते थे। यह भारी पूंजीवाद आकार व प्रकार पर आसक्त था तथा इस कारण से इसने अपनी सीमाओं को भी कठोर तथा अभेदीय बना दिया था। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति अपनी आजीविका की शुरुआत फोर्ड से करता था तो यह निश्चित था कि वह जीवन पर्यन्त नही कार्यरत रहेगा। इस प्रकार अपनी भारी अवस्था में पूंजी तथा इसके द्वारा नियुक्त दोनों एक ही धरातल पर स्थिर थे।

परन्तु वर्तमान काल में, बौमेन का तर्क है कि जहाँ पूंजी की यात्रा आसान हो गयी है (capital travels light), वहीं दूसरी ओर श्रमिक वहीं का वहीं स्थिर है जैसा कि पहले था। परन्तु वह स्थल जिसे एक समय हमेशा के लिए निश्चित मान लिया गया था; अब अपनी ठोसता को खो चुका है। यदि भारी पूंजीवाद की तुलना एक ऐसे जलपोत से करें जिसके कर्मचारी उसके कैप्टन के कक्ष में जा सकते थे और उसके निर्णयों का विरोध भी कर सकते थे। नियमो मे संशोधन करा सकते थे। तो हल्के पूंजीवाद एक ऐसे वायुयान की तरह है जिसके यात्री अपने पायलट से अन्तःक्रिया नहीं कर सकते क्योंकि पायलट की केबिन खाली है; और उसका संचालन स्वचालित है।

विश्व में पूंजीवाद शासन के तहत घटनाएं मैक्स बैबर की उस अनुमानित तथा विश्वासपूर्वक भविष्यवाणी के एकदम विपरीत हुई जिसमें उन्होंने 'नौकर शाही' का चयन समाज के एक प्रारुप के रुप में किया तथा इसे तार्किक क्रिया के अवसीमिय स्वरुप के रुप में चित्रित किया। बैवर ने दो प्रकार की तार्किकताओं में भेद किया है– साधन तार्किकता (instrumental rational) तथा मूल्य– तार्किकता (value rational)। यह मूल्यपरक क्रियाओं का आधार है इसमे मे व्यवहार सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के मूल्यों से प्रेरित होते है जिसमें अपार, सोन्दर्य बोध अथवा धार्मिक कृत्य सम्मिलित किसे गये हैं। इन सभी क्रियाओं को आधुनिक पूंजीवाद में निम्न प्रकार की प्रक्रिया की संज्ञा देकर अप्रासंगिक व अनावश्यक माना गया है। जबकि दूसरी प्रकार की तार्किकता– साधन तार्किकता–के द्वारा वे क्रियाएं होती है जिनमें कर्त्ता किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध साधनों में से सबसे उपयुक्त का चुनाव करता है। बेवर की नौकर शाही की अवधारणा इसी साधन–तार्किक क्रिया पर आधारित है।

बेवर की इतिहास योजना में मूल्यपरक तार्किकता का चाहे जो भी स्थान रहा हो, इस अवधारणा की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती यदि कोई वर्तमान ऐतिहासिक परिवर्तन का विषयवस्तु को समझना चाहता हो। वर्तमान का 'हल्का पूंजीवाद' बेवर के अर्थ वाली 'मूल्यपरक तार्किकता नहीं है; यहाँ तक कि भी यदि यह साधन–तार्किक व्यवस्था के आदर्श प्रारुप से विचलित भी होता है। बेबर की शैली वाली 'मूल्य परक तार्किकता' से हल्का पूँजीवाद अनेकों प्रकाशवर्ष दूर दिखायी देता है।

भारी पूंजीवाद से हल्के पूंजीवाद में परिवर्तन की प्रक्रिया ने एक स्थायी तनाव को जन्म दिया हैः परम्परागत रुप से जहाँ कर्त्ता को लक्ष्य ज्ञात था तथा वह उसे प्राप्त करने के साधनों के बारे में अनिश्चित था अब यह समस्या उलट गयी है। आज के हल्के पूंजीवादी युग में 'अनिश्चितता लक्ष्य को लेकर है' साधनों को लेकर नहीं। नयी परिस्थितियों में अटपटा यह है कि अधिकतर मानव लक्ष्यों के लिए साधन का चुनाव करने की अपेक्षा लक्ष्यों के चुनाव में दुखदायी जीवन व्यतीत करेंगी। अपने पूर्ववर्ती के विपरीत, हल्का पूंजीवाद मूल्यपरक सोन्दर्य बोध से बंधा हुआ है। रोजगार चाहिए कालम का एक अप्रमाणिक छोटा स विज्ञापन– 'have car, can Travel'– जीवन की नवीन समस्याओं का सार प्रदान कर सकता है। साथ ही आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थानों तथा प्रयोगशालाओं के प्रमुखो

से ऐसे प्रश्न पूछने की जिम्मेदारी सोंपकरः "We have found the solution, Now let us find a problem".- हमने हल ढूंढ लिया है, अब हमे समस्या ढूंढनी चाहिए– अथवा What can I do? मै क्या कर सकता हूँ? प्रभावी क्रिया में आ चुका है, तथा How to do best what I must or ought to do anyway? जैसे प्रश्न छोटे तथा कोहली के बल बाहर हो जायेगें।

वे उच्च प्रशासकीय संस्थाएं जो विश्व की नियमितता तथा सीमा की सुरक्षा का कार्यों में सही और गलती देखने का कार्य करती थी व अब परिदश्श्य से बाहर है; तथा विश्व अब अनन्त सम्भावनाओं का संग्रह बन गया हैः एक ऐसा पात्र जो अभी तक उठायी गयी या छोड़ दी गयी अनगिनत सम्भावनाओं से मुख तक भरा हुआ है। अब व्यक्तिगत जीवन से बहुत अधिक यद्यपि दीर्घ, जोखिमपूर्ण, तथा उद्यमी सम्भावनाएं है जिनको आजमाया तथा अपनाया जा सकता है। ये वह अनगिनत मौके है जिन्होंने उच्च प्रशासनिक संस्थाओं के परिदश्श्य से लुप्त हो जाने के फलस्वरुप उत्पन्न खाली स्थान को भर दिया है।

उत्तर–फोर्डवादी 'द्रवीय आधुनिकता' (**fluid modernity**) विश्व जिसमें व्यक्ति उन्मुक्तापूर्वक चुनाव करते है किसी कुटिल 'बिग ब्रदर' से भयभीत नहीं है जो उन्हें सीमा से बाहर जाने पर दण्ड देगा। इस प्रकार के विश्व में यद्यपि किसी दयालु अथवा ध्यान रखने वाले 'बडे भाई' (Elder borther) के लिए भी स्थान नहीं है जिस पर उस समय विश्वास व निर्भर किया जा सके जब यह निर्णय लेना हो कि किन चीजों को करना अथवा रखना था तथा जो छोटे भाइयों की सुरक्षा हेतु गुण्डों के सामने आकर खड़ा हो जाये; तथा इस प्रकार अच्छे समाज के कल्पना लोक के बारे मे भी लिखा जाना बन्द हो गया। अब सब कुछ व्यक्ति पर छोड़ दिया गया है।। अब यह व्यक्ति पर है कि वह स्वयं खोजे कि वह क्या करने की क्षमता रखता है; उस क्षमता का पूर्ण विकास को, तथा उन लक्ष्यों का चुनाव करे जो उसकी क्षमता के द्वारा सबसे अच्छी तरह से प्राप्त किये जा सकते है–अर्थात उच्चतम कल्पनीय सन्तुष्टि तक। यह व्यक्ति पर है कि वह अवांछनीय (unexpected) को भी वश में करके मनोरंजक बना ले।

सम्भावनाओं से भरा विश्व एक आहार–कक्ष की मेज की भाँति है जिस पर भाँति–भाँति के व्यंजन सजा कर रखे हुए जिन्हें देखकर मुँह मे पानी भर आये, तथा खाने के शौकीन इनमें से प्रत्येक का स्वाद लेना चाहेंगे। भोजन करने वाले उपभोक्ता हैं तथा उपभोक्ता के समक्ष सबसे कठिन तथा परेशान करने वाली चुनौती प्राथमिकताओं के चुनाव की आवश्यकता है। उपभोक्ता की विपदा अतिरेक से उत्पन्न होती है, न कि पसन्द की कमी से उपभोक्ता के लिए सबसे अधिक समय चिन्ता उत्पन्न करने वाला प्रश्न है–कि क्या मैंने अपने सभी साधनों का भरपूर लाभ उठाने के लिए उपयोग किया है?

भारी, फोर्डवादी पूंजीवाद कानून प्रदान करने वालों, नियमित डिजाइनरों तथा निरीक्षकों की दुनिया थी, दूसरो से निर्देशित स्त्रियों व पुरुषों की दुनिया जो दूसरों के द्वारा निर्धारित नियमों, तरीको से दूसरों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति में संलग्न थे। इस कारण से यह सत्ताधारियों की दुनिया थी।–

उन नेताओ की जो बेहतर जानते थे तथा शिक्षक जो आपको यह बताते थे आप जो करते है उससे अच्छा कार्य–सम्पादन किस तरह से कर सकते हैं। जबकि हल्का, उपभोक्ता–उपयोगी पूंजीवाद न तो कानून–विद सत्ता को समाप्त करता है, न ही यह उन्हें अनुपयोगी बनाता है। यह मात्र उन्हें अस्तित्व में लाता है तथा अनेकों सह–अस्तित्व पूर्ण प्राधिकारियों में से किसी एक सबसे अच्छे का चुनाव करता है। इसमें प्राधिकारी अब आदेश नहीं देते अपितु वे चुनने वालों से अनुग्रह प्राप्त करते हैं; वे प्रयत्न व आकर्षित करते हैं।

'नेता' उस दुनिया का एक उप–उत्पाद था जिसका उद्देश्य एक अच्छा समाज या अथवा सही तथा यथार्थ समाज था तथा जो इसके बुरे तत्वों को परिभाषित करके उन पर नियन्त्रण रखता था अथवा अयथार्थ विकल्पों को दूर रखता था। परन्तु तरल–आधुनिक विश्व में ऐसा कुछ नहीं होता। निन्दा या लानत जैसी चीजों की जिम्मेदारी समाज पर नहीं डाली जा सकतीः विमोचन तथा विनाश समान रुप से आपके द्वारा (व्यक्ति के द्वारा) रचित होते है तथा पूर्ण रुप से आपसे सम्बन्धित है– उसका परिणाम जो आप, एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रुप में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन के साथ कर रहे होते हैं।

यद्यपि फिर भी ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं दिखती जो जानने का दावा करते है तथा जिनके अनेकों अनुयायी भी हैं जो इससे सहमत है। ऐसे 'जानकार' व्यक्ति, भले ही उनकी ज्ञान–क्षमता पर सार्वजनिक रुप से संदेह न किया जाता हो, वे नेता (leaders) नहीं है; अधिक से अधिक वे उपदेशक/सलाहकार (counsellors) हो सकते हैं। ये कांसिलर्स जो सलाह देते है उसे जीवन–नीति (life-politics) कहते है न कि विशुद्ध राजनीति। क्योंकि इस सलाहकार का कार्य व्यक्ति को उसके वयक्तिगत मामले में सलाह देना है न कि सामाजिक समूहों की समस्याओं का समाधान करना। बोमैन अनेकों उदाहरण प्रस्तुत करत हुए इस बात पर बल देते हैं कि तरल–आधुनिक विश्व मे प्रमुख केन्द्र 'व्यक्ति' है। जो एक स्वतन्त्र व उन्मुक्त जीवन जीता है वह अपने सभी कार्यो के लिए स्वतन्त्र है और उसके परिणाम के लिए उत्तरदायी स्वयं है। यद्यपि समाज मे कुछ ऐसी संस्थाएं जैसेः कॉसिलर्स, लेखक, सेलिब्रिटी भी है जो इन व्यक्तियों के साथ अपने अनुयायी/प्रशंसक के रुप में उनसे अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा करते है । कई व्यक्ति स्वास्थ्य सम्बन्धी सलाहें पुस्तको, टी. वी./रेडियो पर अनौपचारिक चर्चा के कार्यक्रमों के माध्यम से/विज्ञापन कार्यक्रमों मे देते है। परन्तु यह सब वे लाखों दर्शको के समक्ष यह कहते हुए साझा करते हैं कि उनकी (दर्शकों की) व्यक्तिगत समस्याएं क्योंकि मेरी (celebrity) व्यक्तिगत समस्याओं की भांति ही है; इसलिए ये 'सार्वजनिक चर्चा' (public discussion) के लिए उपयुक्त हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे 'सार्वजनिक मुद्दे' (public issues) पर चर्चा कर रहे हैं; वे इस परिचर्चा में 'व्यक्तिगत मुद्दे' पर अपनी व्यक्तिगत हैसियत से भाग लेते हैं। परन्तु उनकी समस्या मूलतः व्यक्ति ही रहती है। सार्वजनिक मुद्दा नहीं होती। इस सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण मुद्दा जरगुन हैबरमास ने यह चेतावनी देते हुए उठाया है कि 'निजीवृत्त' (private sphere) पर 'सार्वजनिक वृत्त' (public sphere) द्वारा आक्रमण करके, उस पर विजय पाकर उसे उपनिवेश बनाया जा रहा है। इस सम्बन्ध में बोमैन का मानना है कि वास्तविकता

इसके विपरीह हैः पूर्व मे नितान्त निजी तथा सार्वजनिक रुप से चर्चा के लिए अनुपयुक्त श्रेणियों में रखे गये मुद्दों को सार्वजनिक वृत्त द्वारा उपनिवेशित कर लिया गया है। अभी जो घटित हो रहा है न ह न केवल सार्वजनिक तथा निजी वृत्तों के बीच की सीमा बदलने के लिए पुर्नचर्चा है। अपितु दांव पर जो लगा है वह है सार्वजनिक वृत्त की पुर्नपरिभाषा करना। एक ऐसे दश्श्य के रुप में जिसमें 'व्यक्तिगत नाटक' का मंचन किया जाता है और उसे सार्वजनिक रुप से दिखाया जाता है तथा देखा जाता है। सार्वजनिक रुचि (public interest) की वर्तमान परिभाषा, जिसे मीडिया द्वारा आगे बढ़ाया जा रहा है तथा जिसको अभी भी सभी या लगभग सही वर्गों की स्वीकृति प्राप्त नहीं है, ऐसे नाटकों को जनता या पब्लिक के सामने दिखाना एक कर्त्तव्य है तथा इसकी अदायगी को देखना जनता का अधिकार है।

जिस प्रकार से व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को अपने स्तर पर परिभाषित करते हैं तथा इनके समाधान के लिए अपने कौशल का प्रयोग करते है, तो मिलाकर संसाधन 'सार्वजनिक मुद्दे', तथा 'सार्वजनिक रुचि' के अवशिष्ट विषय रह जाते है। तथा जब तक ऐसा रहता है, दर्शकों और श्रोताओं को अपने निर्णय व प्रयास पर निर्भर रहने का प्रशिक्षण दिया जाता है जबकि वे जानकारी प्राप्त कर रहे होते हैं। तथा मार्गदर्शन के लिए वे दूसरे व्यक्तिगत जीवन को उतनी ही तत्परता व विश्वास के साथ देखेंगे जितना कि वे दश्ष्टाओं व उपदेशकों के पाठों, उपदेशों व सीखों की ओर इस विश्वास के साथ देखते हैं कि केवल सामूहिक रुप से सोचने, पदों के सोपान को समाप्त करके तथा उनके पद चिन्हों पर चलकर उनकी व्यक्तिगत परेशानियों को दूर अथवा सही किया जा सकता है।

काउन्सिलिंग तथा मार्गदर्शन की खोज एक प्रकार की लत है। जो अन्ततः व्यक्ति को उत्पादक से उपभोक्ता बना देती है तथा वह उपभोक्तावाद की दौड़ में सम्मिलित हो जाता है। इस विशेष दौड़ का आदर्श रुप जिसमे उपभोक्ता वादी समाज का प्रत्येक सदस्य दौड़ रहा है। 'खरीदने की गतिविधि' (Activity of shopping) है। जब तक हम खरीदते रहते है हम इस दौड़ में सम्मिलित रहते हैं तथा यह केवल दुकान, सुपर बाजार अथवा डिपार्टमेंटल स्टोर तक ही सीमित नहीं है जहाँ हम शापिंग करते हैं। हम जितना दुकान के अन्दर खरीदते हैं उतना ही उसके बाहर भी। हम सड़क पर, घर पर, कार्य–स्थल पर तथा फुरसत (leisure) में, जागते हुए तथा स्वप्न में भी खरीदते है। जो कुछ भी हम करते है तथा जो कुछ भी नाम हम अपनी गतिविधियों को देते है, वह एक प्रकार की शापिंग है, एक गतिविधि जो शापिंग के सादृश आकार लेती है। वह कोड जिसमे हमारी 'जीवन नीति' (life-policy) लिखी जाती है, शापिंग की व्यवहारिकता से ही उत्पन्न होता है। शापिंग केवल खाद्य–सामग्री, जूतों, कारों, या फर्नीचर वस्तुओं की ही नहीं होती। वास्तव मे हमारे जीवन में विभिन्न उपायों की खोज भी एक भिन्न प्रकार की शापिंग है। जीवन मे हमारी खुशियां हमारी व्यक्तिगत क्षमताओं पर निर्भर करती है। जिनमें हमे अधिक सक्षम होने की आवश्यकता होती है, तथा इनमे से प्रत्येक हमें शापिंग करने के लिए आमन्त्रित करता है। हम निम्नलिखित गतिविधियों मे शापिंग करते प्रतीत होते हैः

– अपनी आजीविका के लिए आवश्यक कुशलता अर्जित करने के लिए, तथा अपने होने वाले नियोजक को सन्तुष्ट करने के साधनों के लिए कि आप मे ये कुशलताएं है; तथा इस प्रकार की छवि के लिए

– यह दर्शाना होगा तथा उन साधनों को अपनाना होगा जो दूसरों को यह विश्वास दिला सके कि हम वही हैं जो 'हम दर्शा रहे हैं'।

– यदि हमे नये मित्र बनाने के तरीके तथा पहले के मित्रों से जिनकी अब आवश्यकता नहीं है, इनसे पीछा छुड़ाने के तरीके;

– लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के तरीके, तथा लोगों की निगरानी से बचने के लिए तरीके,

– प्रेम से अधिक से अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करने के तरीके तथा प्रेमी अथवा प्रेम–सहयोगी (loved and loving partner) पर 'निर्भर होने' से बचने के लिए उपाय; प्रेमिका/प्रियतम का प्यार पाने के लिए उपाय तथा यदि एक बार प्रेम क्षीण हो जाये अथवा सम्बन्ध से आनन्द की प्राप्ति होना बन्द हो जाये, तो उसे संघटन (Union) को कम कीमत अदा करके समाप्त कर देने हेतु उपाय;

– एक बरसाती दिन (में आनन्द प्राप्ति के लिए) के लिए धन बचाने के उत्तम उपायों के लिए, तथा अर्जित करने से पहले धन खर्च करने के सुविधाजनक उपाय; इस प्रकार से हमारी शापिंग सूची का कोई अन्त नहीं है। इन सभी के लिए हमें एक कुशल व अपराजित खरीदार होना पड़ेगा। अतः आज का उपभोक्तावाद अब मात्र आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने वाला नहीं रह गया है। उपभोक्तावादी समाज का परिवर्तित–अर्थ अब व्यक्त आवश्यकताओं का समूह न रह कर इच्छा हो गया है–जो 'आवश्यकता' (स्व–उत्पन्न, तथा स्व–प्रवृत्त प्रेरणा है जिसका औचित्य या कारण बताना आवश्यक नहीं होता) की अपेक्षा एक कहीं अधिक वाष्पशील (volatile) तथा क्षणिक (ephemeral), अस्पष्ट (evasive) तथा स्वेच्छाचारी (capricions) तथा आवश्यक रुप से एक असन्दर्भित तत्व है।

उपभोक्ता वाद का इतिहास इन अनुक्रमिक 'ठोस' व्यवधानों–(जो कल्पना की मुक्त उड़ान को सीमित करने तथा वास्तविकता सिद्धान्त द्वारा 'आमोद सिद्धान्त' को छोटा कर देता है) को तोड़ने व हटा देने की कहानी है। 19वीं शताब्दी के अर्थशास्त्रिों द्वारा 'आवश्यकता' (need) को 'ठोसता' (solidity) का प्रतीक मान लिया गया था– जो दृढ़ (inflexible), स्थायी रुप से परिगत (circumscubed) तथा निश्चित है–को हटाकर 'इच्छा द्वारा विस्थापित कर दिया था। जो 'आवश्यकता' की तुलना में कहीं अधिक 'द्रव्यशील' तथा विस्तार करने की क्षमता रखती है। परन्तु अब 'इच्छा' के हटने की बारी है क्योंकि अब इसकी उपयोगिता भी समाप्त हो गयी है; उपभोक्ता की लत के वर्तमान स्तर पर पहुँच जाने के बाद एक नयी व अधिक शक्तिशाली प्रेरकत्व की आवश्यकता है जो उपभोक्ता की मांग को उपभोग–प्रस्ताव के साथ बनाये रखे। 'कामना' (wish) वह आवश्यक विकल्प है 'यथार्थ

सिद्धान्त' द्वारा 'आमोद सिद्धान्त पर लगे अंकुशों से इसको पूर्णरुप से अन्तिम गैसीय वस्तु को जारी कर दिया गया है।

उत्तर–आधुनिक समाज अपने सदस्यों को एक 'उत्पादक' की अपेक्षा 'एक' उपभोक्ता के रुप में संलग्न रखती है (बोमैन 1996)। यह विभेद बहुत मूलभूत है। एक उत्पादक भूमिका के चारों ओर बुना गया जीवन 'नियामकों' द्वारा नियन्त्रित होता है। जिसमें व्यक्ति की जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की एक निम्न–रेखा होती है साथ ही इनकी एक उच्च–सीमा भी होती है जिसकी व्यक्ति इच्छा या कामना रखता हे। इस सीमा से ऊपर जो कुछ आता है उसे विलासिता (luxury) कहा जाता है। इस प्रकार इ समाज मे मुख्य विषय 'सहमति' (conformity) का होता है।

परन्तु 'उपभोग' के चारों ओर संगठित जीवन में नियामकों की कोई भूमिका नहीं होती–यह प्रलोभन द्वारा कभी न समाप्त होने वाली इच्छाओ व वाष्शील इच्छाओं द्वारा निर्देशित होता है। इसमें उच्च तथा निम्न की कोई सीमा नहीं होती। विलासिता का विचार भी अर्थहीन हो जाता है (क्योंकि आज की विलासिता कल की आवश्यकता बन जाती है)। नियामकता का सिद्धान्त भी बेमानी है। अतः प्रमुख विषय वस्तु 'पर्याप्तता' (adequacy) बन जाती है।

अब यदि उत्पादकों का समाज अपने सदस्यों के लिए स्वास्थ्य का कोई मानक निशिचित करता है जो सभी को प्राप्त करना चाहिये तो उपभोक्तावादी समाज अपने सदस्यों के समक्ष 'चुस्त–दुरुस्त' (fitness) का आदर्श को प्रस्तुत करता है। प्रायः 'स्वास्थ्य' तथा 'दुरुस्तता' को संलग्न अवधारणाओं तथा पर्यायवाची की भांति उपयोग में लाया जाता है; परन्तु ये दोनों भिन्न प्रकार के संवाद है तथा भिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। स्वास्थ्य, उत्पादकता वादी समाज को दूसरी नियामक धारणाओं की भांति अपनी सीमा 'सामान्य' तथा 'असामान्य' के निश्चित करता है; यह मानव शरीर की उचित तथा वांछित अवस्था है जिसको निश्चित रुप से परिभाषित व मापा जा सकता है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक क्षमता से होता है।

इसके विपरीत 'दुरुस्तता' ठोस न होकर कुछ भी हो सकती है। इसके बारे में कोई निश्चितता तय कर पाना असम्भव हैं। 'दुरुस्त रहने' का अर्थ है–एक लचीला, अवशोषी, तथा सामंजस्यपूर्ण शरीर का होना। यदि स्वास्थ्य ' न कम न अधिक (no more and no less) प्रकार की अवस्था है तो दुरुस्तता स्थायी रुप से 'अधिक' की ओर खुली होती है–यह किसी भी प्रकार के शारीरिक क्षमता के किसी विशेष मानक से सम्बन्धित नहीं होती है अपितु इसके विस्तार की सम्भावना होती है। स्वास्थ्य के विपरीत यह एक 'व्यक्तिगत अनुभव' है। सभी अन्य व्यक्तिगत अवस्थाओं की भांति ही 'दुरुस्त रहने की शाब्दिक अभिव्यक्ति करना एक दुष्कर कार्य है। इसका अनुभव 'व्यक्ति स्वयं' की कर सकता है। स्वास्थ्य के विपरीत, दुरुस्त रहने के कार्य का कोई अन्त नहीं है। इसके लक्ष्य अस्थायी तथा कभी न समाप्त होने वाले प्रयास की अपेक्षा करते हैं।

अतः तरल आधुनिकता वाले समाज में सभी नियामकों की स्थिति, एक अनगिनत तथा अनिश्चित सम्भावनाओं से परिपूर्ण समाज में, गहन रुप से विचलित हो चुकी है तथा नाजुक हो जाती है।

एक उपभोक्ता वादी समाज में अन्य सभी गतिविधियों की भांति 'दुरुस्त किस्म का स्वास्थ्य' (fitness-like health) बनाये रखना एक खर्चीला कार्य है। तथा इसके लिए अनेकों विशेष यन्त्र व उपकरणों की आवश्यकता होती है जिन्हें केवल उपभोक्ता बाजार ही उपलब्ध कर सकता है। इस प्रकार फिटनेस व स्वास्थ्य के लिए 'शापिंग' करने आवश्यकता से अधिक कारण हैं। इस प्रकार उपभोक्तावादी समाज में 'शापिंग' एक 'दैनिक अनुष्ठान' का पर्याय बन जाता है। एक उपभोक्ता वादी समाज में, उपभोक्ता निर्भरता में सहभागिता–शापिंग की सार्वभौमिक निर्भरता में सभी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अनिवार्य शर्त है; सबसे ऊपर, भिन्न रहने की स्वतन्त्रता, एक 'पहचान'(identity) रखने क स्वतन्त्रता इस व्यक्तिगत भिन्नता का साधन बड़े स्तर पर उत्पादित उपकरण हैं। 'विशिष्ट' तथा 'व्यक्तिगत' पहचान को केवल प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इनके खरीदे पदार्थ में कड़ी मेहनत द्वारा निर्मित किया जा सकता है तथा उसे पर नियन्त्रण केवल 'शापिंग' के द्वारा किया जा सकता है। परम्परागत समाज में पहचान में व्यक्ति व वस्तु दोनों सम्मिलित थे; परन्तु दोनों ने अपनी ठोसता आधुनिक समाज मे खो दी।

शापिंग से ग्रस्त समाज में स्वतन्त्रता का प्रकार 'मूल्य–स्वतंत्रता' के उच्चतम स्तर तक पहुँच गया है जिसने जीवन के सभी पक्षों को एक उपभोक्ता की पसन्द मे परिवर्तित कर दिया है जिसमें व्यक्ति की क्षमता को जीवन के किसी भी निर्णय को एक उपभोक्ता–पसन्द के रुप में देखने को विवश कर दिया है। इस प्रकार इस तरल आधुनिक समाज में व्यक्ति अपनी व्यैक्तिकता को खोकर मात्र एक उपभोक्ता बन गया है।

## References

Bauman, Zygmunt 2012: *Liquid Modernity*, Cambridge: Polity Press (2nd Edition; First Edition published in 2002).

Beck, Ulrich 1992: *Risk Society: Towards a New Modernity*, London: Sage Publications.

Durkheim, Emile 1933: *The Division of Labour in Society*, Illinois: The Free Press of Glencoe.

Giddens, Anthony 1990: *The Consequences of Modernity*, Cambridge: Polity Press.

Lash, Scott 1990: *Sociology of Postmodernism*, London: Routledge.